THE TIMES OF INDIA

Date: 05-04-17

Applying band aid

Farm loan waivers treat a mere symptom of agrarian distress and create other complications

What solution do Indian politicians reach for whenever they have a social or economic problem on hand? If it's not reservations, then it's a farm loan waiver. Nine years after UPA-1 initiated a nationwide waiver of farm loans to mitigate agrarian distress, they have been resurrected again as a silver bullet to combat stress among farmers – Uttar Pradesh government yesterday announced a Rs 36,359 crore farm loan waiver. At a superficial level, this may seem the best short-term solution in the way reservations are for joblessness. But given the long and futile experience India has had with loan waivers, it is important to be mindful of the collateral damage to banks. Weakening the banking system will in the end hurt farmers too.

The big picture in agriculture is distressing. A sector accounting for just about 14% of GDP supports close to half of India's workforce. It is not that governments have been unmindful of the challenges. India has a complex system of government support programmes and a directed credit policy for banks to help farmers. But it hasn't worked well.

As bankers have pointed out, it undermines the credit culture as it sets a precedent. As elections are a regular feature, it creates an environment where farmers anticipate a loan waiver and have little incentive to repay loans. It is also unfair to sincere borrowers. Instead of a loan waiver, state governments should use the existing Direct Benefits Transfer (DBT) infrastructure to transfer cash to farmers. If 90 schemes of central government are already on a DBT platform, it should not be infeasible for state governments to use the same route.Public sector banks as a group are in a fragile state, recording a net loss of Rs 17,993 crore in 2015-16. The weight of bad loans on their books has acted as a drag on the entire economy. At this juncture states should not add to their burden with loan waivers. If governments really want to help agrarian sector, they should create conditions that allow people there to find jobs in manufacturing and services. That will be far more effective than merely treating a symptom.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 05-04-17

RTI debate: Don't scare citizens

A controversy over the government's proposed rules and procedures for the Right to Information (RTI) Act overlooks the simple point that the goal right now should be to move on to a Duty to Publish rather than clean up the working of the RTI Act. The government says that the changes it has proposed were formulated by the previous UPA government and that it is merely taking forward the process started by its predecessor.

Certain of the proposed changes have caused alarm among RTI activists. The provision that an RTI query would lapse if the questioner passes away while the query is being processed certainly could have ominous implications.The surest way to prevent uncomfortable information surfacing on account of an RTI query from a pesky interlocutor would, indeed, be to bump him off. While this certainly could not have been the intent of either this or the previous government, the possibility cannot be dismissed out of hand, given the reality of repeated attacks and killings of RTI activists in different parts of the country.

At the same time, the proposal to limit the size of the question and to raise the RTI fee to Rs50 do make sense, to make the process more efficacious and not a burden on the exchequer. But the real reform called for in relation to the citizens' right to know is to move forward on a conceptual rather than merely procedural plane. Once a government decision is taken, there is no reason why every file noting relating to it should not be placed in the public domain. Of course, information that might compromise national security and is thus outside the purview of RTI even now can continue to be kept confidential.But there is no reason why the government should sit on the details of public decision-making till someone puts in a query. It should proactively publish on its website all its paperwork on the matter in a way that is easily accessible. Information on the working of the government is a powerful source of citizen empowerment. As India's democracy matures, citizens ought to have greater and easier access to that information.

दैनिक भास्कर

Date: 05-04-17

तथ्यों का मर्जी मुताबिक अर्थ निकालने का युग

बचपन में ही मुझे सच जरूरत से ज्यादा महत्व दिया गया विचार या गुण लगता था। आप पर निर्भर है कि आप इसे विचार मानते हैं या गुण। मेरे माता-पिता दोनों ही स्कूल टीचर थे और वे इन मूल्यों को बहुत गंभीरता से लेते थे। मैं उनके दृष्टकोण का सम्मान करता था (यह एकमात्र ईमानदार दृष्टिकोण था) लेकिन, मैं था ठीक दूसरी तरफ। मेरे दिमाग में सच और कल्पनाशीलता के बीच लड़ाई चलती रहती थी। मैं जानता था कि मैं किस ओर रहना चाहता था। मेरी कविताओं की पहली किताब तब आई जब में 16 साल का था। यह असंदिग्ध बयान था और इसके साथ सत्य पीछे चला गया और कल्पनाशीलता ने मेरे जीवन पर कब्जा कर लिया।एक दशक और तीस किताबें लिखने के बाद मैं फिर उसी रणभूमि पर लौट आया हूं। लेकिन, इस बार मैं दूसरी तरफ हूं। इमरजेंसी के वर्षों ने मेरे ऊपर गहरा असर डाला है और मुझे अहसास हुआ कि सत्य और कल्पना के बीच चुनाव हमेशा आसान नहीं होता। इसलिए मैंने पत्रकारिता के लिए कविता छोड़ दी। मैंने जैसा देखा उसके मुताबिक मेरे सामने यही एकमात्र विकल्प था। मैंने सोचा और सच तो यह है कि मेरा भरोसा था कि मेरे शब्द मेरे आसपास की दुनिया बदल सकते हैं (इंदिरा गांधी ने मुझे आगाह किया था कि आगे जाकर मुझे इस धारणा को लेकर सबक मिलेगा)।पत्रकारिता बहुत कड़ी टास्क मास्टर होती है। मैं बहुत कड़ी मेहनत करता.. बहुत-बहुत प्रयास करता जैसा कि अब अनुपलब्ध 'द इलस्ट्रेटेड विकली ऑफ इंडिया' के अंक आप को बताएंगे, यदि वे कहीं आपको मिल जाएं। सप्ताह-दर-सप्ताह हम बहुत ही रोमांचक न्यूज स्टोरी करते, ऐसी जो कोई अन्य पत्रिका नहीं कर पाती। यह अलग ही किस्म की पत्रकारिता थी। कभी-कभी हम सफल होते। एक मुख्यमंत्री को इस्तीफा देना पड़ा या कोई सरकार गिर जाती। लेकिन,

ज्यादातर हम नाकाम ही रहते। प्रयास के अभाव में नहीं बल्कि इसलिए कि उस जमाने में व्यवस्था से मुकाबला करना आसान नहीं था। भ्रष्ट लोग अच्छी तरह जमे बैठे थे।लेकिन, यह बहुत ही साहसी यात्रा रही। एक दशक बाद जब मैंने पूर्णकालिक पत्रकारिता छोड़ने का फैसला कर टाइम्स ऑफ इंडिया में संपादक का पद छोड़ दिया, तो मेरे सामने फिर वही दुविधा थी। क्या मुझे सच को खोज निकालने के काम पर डटे रहना चाहिए,जो आमतौर पर घिनौना सच ही निकलता था और मैं इसे खोज भी लेता तो यह मुझे मन की मुकम्मल शांति नहीं देता था। या मैं कल्पना की दुनिया में बेहतर स्थिति में था, जहां प्रत्येक शब्द मैं जो इस्तेमाल करता था, लगभग शून्य से मैं जो बिंब निर्मित करता था, जो भी सपना मैं देखता था वह जादुई तरीके से, आश्चर्यजनक रूप से मेरा ही होता था।

सत्य और कल्पना के बीच संघर्ष जारी रहा। लेकिन, अब मैं खुश था कि मुझे एक को तरजीह देकर दूसरे का चुनाव करने की जरूरत नहीं रही। मैं अपने कॉलम लिखता रहा। मैं संसद में पहुंचा और मुझे फिर अहसास हुआ कि व्यवस्था उसे बदलने की कोशिश करने वालों की तुलना में बहुत बड़ी और बहुत ज्यादा शक्तिशाली है। हां, मैंने किताबें लिखी, कुछ फिल्में बनाईं, दूर-दूर तक यह देखने के लिए यात्राएं कीं कि वह दुनिया, जिसे मैं किसी वक्त बदलना चाहता था, क्या मुझे बदल सकती है। मुझे ऐसी सार्थकता दे सकती है, जो मुझे हमेशा ही चकमा देती दिखाई देती है।इस बीच कम्युनिज्म का पतन होकर अंत हो गया। देश के हृदय प्रदेशों की राजनीति में कभी प्रभावशाली रहे समाजवाद की भी पकड़ छूट रही थी। अभिमान और बर्दाश्त के बाहर अहंकारी कांग्रेस का तो खुद से ही संपर्क खत्म होने लगा। अब यह वह पार्टी नहीं रही, जो देश को बांधे रख सकती हो। अपनी हर गलती के साथ यह कमजोर होती गई और चाहे पार्टी नेताओं ने इसकी ओर से आंखें मुंद रखी थी, मतदाताओं ने अपना मन बना लिया था। वे सारे संभव और व्यावहारिक विकल्पों को तलाश रहे थे। उन्होंने वीपी सिंह और चंद्रशेखर जैसे नेताओं के साथ प्रयोग किए, दोनों उल्लेखनीय व्यक्तित्व थे पर दुर्भाग्य से दोनों लंबे समय प्रधानमंत्री नहीं रहे। फिर देवेगौड़ा और इंद्रकुमार गुजराल आए, जिन्हें पता नहीं था कि वे 7 रेसकोर्स रोड पर कर क्या रहे हैं।

इस बीच कांग्रेस फिर लौटी और नरसिंह राव में वे महान गुण खोजने का प्रयास करने लगी, जो उनमें थे ही नहीं। वे तो इतना ही जानते थे कि कैसे कम से कम बोला जाए। सौभाग्य से उनका यह गुण उन्हें उनके कॅरिअर में से निकाल ले गया। वाजपेयी के वर्षों में मैं संसद में था और मुझे स्पष्ट हो गया कि भारत उससे कहीं तेजी से बदल रहा है, जितना लोग समझ रहे हैं। मनमोहन के दो कार्यकाल, पहला वह जिसने बदलाव लाकर भारत को पहली पंक्ति के देश में ला दिया और दूसरे ने सब कुछ नष्ट कर दिया। जमीनी जुड़ाव न रखने वालों ने उनकी सरकार पर कब्जा कर लिया और वे असहाय होकर देखते रहे। यह कांग्रेस के अंत की शुरुआत थी।फिर मोदी तारणहार बनकर आए और पहली बार दक्षिणपंथ को भारतीय राजनीति में गंभीरता से पैर जमाने का मौका मिला। वाजपेयी ने नेहरू की पुरानी परम्परा का अनुसरण किया। मोदी ने तुरंत भांप लिया कि दोनों के लिए भविष्य में कोई जगह नहीं है। अब राजनीति की नई भाषा की जरूरत है, एक नई कल्पना। एल्विस की तरह सत्य तो बहुत पहले ही इमारत छोड़कर चला गया था। वास्तविकता तो यह थी कि अब सत्य और कल्पना के बीच संघर्ष नहीं था। अब वे एक ही सिक्के के दो पहलू थे। आप जैसा चाहो वैसा उलटो-पलटो।उस अर्थ में मेरी जिंदगी ने भी सर्कल पूरा कर लिया। बरसों बाद मुझे यह अहसास हो गया था कि सत्य और कल्पना वास्तव में कभी संघर्ष में थे ही नहीं सिर्फ मेरे दिमाग के अलावा। ट्रम्प इसे पोस्ट ट्रुथ पॉलिटिक्स का युग कहते हैं, जिसमें आप तथ्यों को मर्जी मुताबिक चुन सकते हैं और जिस भी निष्कर्ष पर पहुंचना चाहो, पहुंच सकते हो। लोकप्रिय कल्पनाओं की रिफॉर्मेटिंग। दोनों को मिला दें और आपकी आंखों के सामने असंभव होने लगेगा। कविता व राजनीति एक साथ आ रहे हैं, फंतासी व वास्तविकता मिल रहे हैं, इतिहास व धर्म, नफरत व उम्मीद, क्रोध और सुलह-सफाई, सोशल मीडिया व आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सब एक और समान हो रहे हैं। उस दुनिया में सबकुछ और कुछ भी नहीं, जहां कुछ भी सबकुछ नहीं है। यानी ज्यादा से ज्यादा जीरो सम गेम। नफा-नुकसान सब बराबर। जीवन ऐसा ही है। ऐसी ही भिन्नताओं के साथ हमने जीना सीखा है।

प्रीतीश नंदी, वरिष्ठ पत्रकार एवं फिल्म निर्माता (ये लेखक के अपने विचार हैं।)

Date: 05-04-17

उच्च शिक्षा में रैंकिंग से आगे जाकर काम करना होगा

केंद्र सरकार द्वारा घोषित उच्च शिक्षण संस्थानों की रैंकिंग ने देश में उच्च शिक्षा की स्थिति पर एक बार फिर गौर करने का अवसर दिया है। विश्वविद्यालयों की ओवरॉल रैंकिंग में भारतीय विज्ञान संस्थान बेंगलुरु (आईआईएससी) का पहला स्थान स्वाभाविक है। आईआईएससी ने लंबे समय से रिसर्च और इनोवेशन के क्षेत्र में अपनी श्रेष्ठता बनाए रखी है। 2015 में जब पहली बार विश्व रैंकिंग में भारत के दो शिक्षण संस्थानों को पहले 200 विश्वविद्यालयों में जगह मिली थी तब आईआईएससी का नंबर 147 वां था। आईआईटी दिल्ली इस सूची में 179 वें नंबर पर थी।

सरकार की ओवरॉल रैंकिंग में जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी के छठवें व यूनिवर्सिटी श्रेणी में दूसरे स्थान पर आने से उन लोगों को निराशा होगी जो इस उच्चस्तरीय विश्वविद्यालय को देशद्रोहियों का अड्डा कहते नहीं थकते हैं। इससे शिक्षण, बौद्धिक विमर्श, खुलेपन और रिसर्च के लिए विख्यात इस संस्थान के अध्यापकों, छात्रों को और अधिक बेहतर काम करने की प्रेरणा मिलेगी। सरकार ने उच्च शिक्षण संस्थाओं की रैंकिंग तय करने की शुरुआत पिछले वर्ष से की है। हालांकि, कई विशेषज्ञ मानते हैं, रैंकिंग का काम सरकार की बजाय कोई प्रतिष्ठित गैर-सरकारी संस्था करे तो ज्यादा अच्छा होगा। विश्व के कई देशों में इस तरह की रैंकिंग गैर-सरकारी संस्थाएं देती हैं। फिर भी, रैंकिंग को एक सकारात्मक नज़रिये से देखा जा सकता है।

इससे सभी शिक्षण संस्थाओं को बेहतर परिणाम देने की प्रेरणा मिलेगी। सरकार को रैंकिंग से आगे जाकर कदम उठाना चाहिए लेकिन, बजट प्रावधान उजली उम्मीदें नहीं जगाते हैं। 2017-18 के बजट में उच्च शिक्षा के लिए केवल 26,038 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है। यह पिछले वर्ष के 26,855 करोड़ रुपए से कम है। पिछले बजट में 10 सरकारी और 10 प्राइवेट उच्चस्तरीय संस्थाओं की स्थापना का इरादा जताया गया है। इस दिशा में अब तक कोई ठोस काम नहीं हुआ है। भारत विश्व की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था है। सरकार को उसकी भावी जरूरतों को ध्यान में रखकर कम से कम धन तो उदारता से उपलब्ध कराना चाहिए। यदि शिक्षा के स्तर में सुधार नहीं हुआ तो आगे देश का आर्थिक विकास ठहर जाएगा, क्योंकि दुनियाभार में अर्थव्यवस्थाएं उत्तरोत्तर ज्ञान आधारित हो रही है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 05-04-17

वित्त विधेयक संशोधनों से निकली तीन अहम बातें

वर्ष 2017-18 का केंद्रीय बजट पारित करते समय जो संशोधन किए गए, उन पर बहस मोटे तौर पर इस बात पर केंद्रित रही कि कैसे सरकार ने कुछ अन्य कानूनों में बदलाव को वित्त विधेयक के साथ जोड़कर पारित करने की राह चुनी। जाहिर सी बात है कि ऐसा करने के पीछे राजनीतिक वजह जिम्मेदार थीं। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि उक्त संशोधनों को वित्त विधेयक, जो कि हर तरह से धन विधेयक है, के साथ जोड़ते ही उन्हें कानून बनने के पहले राज्य सभा की मंजूरी की आवश्यकता नहीं रह गई।

ऐसा करना हर दृष्टि से आपत्तिजनक था। करीब 10 ऐसे अलग-अलग कानूनों को वित्त विधेयक में शामिल किया गया जिन्हें अन्यथा किसी भी तरह धन विधेयक का हिस्सा नहीं माना जा सकता था। सरकार का यह कदम देश के उच्च सदन की खुलेआम अवज्ञा थी। ऐसा करने का अर्थ यही था कि सरकार की नजर में इन जरूरी बदलावों के दौरान उच्च सदन यानी राज्य सभा की राय की कोई अहमियत ही नहीं थी। सरकार ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि राज्य सभा में उसका बहुमत नहीं है और वह वहां विधेयकों को आसानी से पारित नहीं करा सकती। बहरहाल, इस कदम के पीछे के राजनीतिक औचित्य को किसी भी तरह सही नहीं ठहराया जा सकता। सरकार अपने पक्ष में यही दलील दे सकती है कि इन प्रस्तावित बदलावों में से कई वित्त मंत्री के बजट भाषण का हिस्सा थे इसलिए उनको वित्त विधेयक में शामिल करना गलत नहीं है। लेकिन यह दलील कमजोर है और इससे यह बात जायज नहीं हो जाती।बहरहाल इससे तीन बातें एकदम स्पष्टï होकर उभरती हैं। पहला, इससे पता चलता है कि विपक्षी राजनीतिक दलों की तैयारी कितनी कमजोर है। दूसरा, इससे देश के नियामकीय संस्थानों की कमजोरी साबित होती है और तीसरा, इससे सरकार की एक मामूली ही सही लेकिन अपना आकार छोटा करने की कोशिश नजर आती है। हालांकि आकार छोटा करने की यह कवायद भी सामान्य से अलग है। आइए इन तीनों बिंदुओं पर करीबी दृष्टि डालें। इन तमाम गैर वित्त विधेयकों में बदलाव लाने का इरादा तो सरकार ने फरवरी में वर्ष 2017-18 का बजट पेश करते समय ही जाहिर कर दिया था। सवाल यह उठता है कि तब से लेकर अब तक विपक्षी राजनीतिक दल क्या कर रहे थे जबकि इस दौरान संसद का सत्र भी चल रहा था? उनकी खामोशी ने सरकार को बजट के अंत के बाद कुछ और संशोधन शामिल करने का अवसर दिया। अगर विपक्ष सतर्क होता और मीडिया समेत नागरिक समाज ने चौकन्नापन दिखाया होता तो निश्चित तौर पर ऐसे गलत रुझान को रोकने में जरूरी मदद मिल सकती थी।

यह भी याद रखने वाली बात है कि कई विधायी बदलाव जो वित्त विधेयक के पारित होने के बाद अमल में आएंगे उनकी बदौलत कम से कम आठ अलग-अलग पंचाटों का मौजूदा के साथ विलय हो जाएगा। इनमें से प्रत्येक पंचाट किसी न किसी क्षेत्र की नियामकीय व्यवस्था का हिस्सा है। ऐसे में आठ नियामकों का काम अब उनसे छीनकर अन्य पंचाट को सौंप दिया जाएगा। इससे कुछ पंचाटों पर स्वाभाविक रूप से काम का बोझ काफी बढ़ जाएगा। वहीं एक बात और गौर करने लायक है। नियामकों ने एक पंचाट का दूसरे में विलय किए जाने के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है। उनकी ओर से कोई विरोध नहीं किया गया। सबसे बुरी बात यह है कि उन नियामकों की ओर से भी पूरी खामोशी देखने को मिल रही है जिनके पंचाट पर अब उक्त आठ पंचाटों का अतिरिक्त काम का बोझ लाद दिया गया है। कम से कम यह सवाल तो उठना ही चाहिए था कि क्या इस प्रस्तावित विलय का असर उनके काम पर नहीं पड़ेगा?एक अधिक ताकतवर और सक्रिय नियामक क्या कर सकता है इसका अंदाजा कुछ वर्ष पहले की घटना से लगाया जा सकता है। उस वक्त सरकार वित्त विधेयक की मदद से आरबीआई अधिनियम में संशोधन करने से पीछे हट गई थी क्योंकि रिजर्व बैंक ने इसका विरोध स्पष्टï कर दिया था। यह बानगी एक तगड़े और कमजोर नियामक के बीच का अंतर समझने के लिए काफी है। एक और बात, आठ पंचाटों का मौजूदा पंचाट में विलय दिखाता है कि सरकार अपना आकार छोटा कर रही है। सरकार निश्चित तौर पर इन पंचाटों के कर्मचारियों समेत अपनी तमाम लागत कम कर रही है। लेकिन गौर करने वाली बात यह है कि इस कटौती का बड़ा असर न्यायपालिका पर ही होने जा रहा है। ऐसा इसलिए क्योंकि अधिकांश पंचाटों की अध्यक्षता सेवानिवृत्त न्यायधीशों के पास ही है और अब आठ पंचाटों के मौजूदा संस्थानों में विलय के बाद इन रिक्तियों में और अधिक कमी आएगी। वित्त मंत्री अरुण जेटली ने कहा है कि इन तमाम नियुक्तियों के मामले में न्यायपालिका से मशविरा किया जाएगा लेकिन यह कोरा आश्वासन है क्योंकि प्रभावी तौर पर देखा जाए तो न्यायपालिका खुद नरेंद्र मोदी सरकार के उसका कद छोटा करने के प्रयास का शिकार हो गई है। जबकि नौकरशाही और नौकरशाहों की प्रधानता वाले संस्थान बच गए हैं जबकि न्यायपालिका की प्रमुखता वाले संस्थानों का आकार कमतर हुआ है।

Date: 05-04-17

गर्मी और जल संकट

गर्मी का मौसम आते ही देश के अधिकांश इलाकों में जल संकट की शुरुआत हो जाती है। इस वर्ष हालात ज्यादा खराब हो सकते हैं क्योंकि एक तो तापमान औसत से काफी ज्यादा रहने का अनुमान है और दूसरा मॉनसून कमजोर रहने की बात कही जा रही है। कई इलाकों में खासतौर पर देश के दक्षिणी इलाकों में वर्ष 2014 से लगातार सूखा पडऩे के कारण पानी की भीषण कमी है। अगर आशंका के मुताबिक मॉनसून के पहले आमतौर पर होने वाली बारिश भी दगा दे गई तो जल संकट और गहरा हो जाएगा। उन हालात में दूरदराज इलाकों से पानी ढोकर लाना होगा ताकि लोगों की न्यूनतम जरूरत तो पूरी हो सके।

हालांकि देश के 91 बड़े जलाशयों में अभी भंडारित जल का स्तर सामान्य से कुछ ज्यादा ही है लेकिन देश के दक्षिण में स्थित 31 जलाशयों में जल स्तर काफी कम है। ये जलाशय आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में स्थित हैं। चेन्नई और उसके आसपास के इलाकों में स्थित बोरवेल या तो सूख चुके हैं या फिर उनको गहरा करने की आवश्यकता है। बेंगलूरु और उसके आसपास के इलाके में भी जल स्तर तेजी से गिर रहा है। आश्चर्य नहीं कि कर्नाटक सरकार ने संकेत दे दिया है कि वह पर्याप्त बारिश नहीं होने पर तमिलनाडु को होने वाली कावेरी नदी के पानी की आपूर्ति को कम करेगी या रोक देगी। देश के उत्तरी, मध्य और पश्चिमी इलाकों में भी पानी की चिंता तापमान के साथ-साथ बढ़ रही है। भारतीय मौसम विभाग के मुताबिक देश के कई राज्यों में 50 से अधिक ऐसे जिले हैं जो लू के थपेड़ों और सूखे मौसम से बहुत अधिक प्रभावित रहने वाले हैं। इतना ही नहीं मौसम का अनुमान लगाने वाले कई निजी संस्थानों ने भी कहा है कि इस वर्ष मॉनसून का स्तर सामान्य से कम रहेगा। हालांकि अभी इस अनुमान की तथ्यों से पुष्टिं होनी बाकी है। मौसम विभाग ने भी मॉनसून को लेकर दीर्घावधि के अनुमान पेश नहीं किए हैं। इस चेतावनी की अनदेखी नहीं की जा सकती है।

मौसम विभाग ने फरवरी में ही चेतावनी दे दी थी कि अप्रैल और मई अपेक्षाकृत गर्म और शुष्क रहेंगे तथा इन महीनों में मॉनसून पूर्व की कोई गतिविधि नहीं दिखेगी। ऐसा मौसम आम लोगों, पालतू पशुओं, खेती, जलविद्युत और अन्य जल आधारित क्षेत्रों को प्रभावित कर सकता है। सन 1901 के बाद 2016 सबसे गर्म वर्ष था। अगर 2017 में और अधिक गर्मी पड़ी तो संकट से निपटने के लिए खास तरीके तलाश करने होंगे। जल प्रबंधन की दृष्टिं से देखें तो इसके बेहतर इस्तेमाल, नुकसान को रोकने तथा हर बूंद के संरक्षण के लिए पहले से तैयारी करना जरूरी है। मानव स्वास्थ्य के लिए मौसम विभाग ने राष्टंि्रीय आपदा प्रबंध प्राधिकार, रेडक्रॉस सोसाइटी और मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया के साथ मिलकर एक विस्तृत कार्य योजना तैयार की है ताकि गर्मी के कारण कम से कम नुकसान हो। सार्वजनिक स्थानों पर प्याऊ, स्कूलों का समय बदलना, अस्पतालों में बच्चों और महिलाओं के वार्ड नीचे की मंजिल पर लाना और समय-समय पर मौसम से जुड़ी चेतावनी जारी करने जैसी सलाह सामने आई हैं। गरीबों के लिए जाड़ों के रैन बसेरा के तर्ज पर गर्मियों में दिन में सर छुपाने की जगह भी बनानी होगी। रेडक्रॉस और एमसीआई ने ओरल रिहाइड्रेशन के पैकेट देने की बात कही है। 11 राज्यों ने गर्मी और जल संकट से निपटने की कार्य योजना तैयार कर ली है। केंद्र सरकार को चाहिए कि वह अन्य को ऐसा करने को कहे। उसे अपना योगदान भी देना चाहिए। गत वर्ष 1,100 लोगों ने भीषण गर्मी से जान गंवाई थी। इस वर्ष ऐसा नहीं होना चाहिए।

दैनिक जागरण

Date: 05-04-17

खुफिया तंत्र में बड़े बदलाव की जरूरत

हालिया आतंकी घटना (भोपाल-उज्जैन ट्रेन ब्लास्ट) के बाद के रहस्योद्घाटन से स्पष्ट हो गया है कि भारत में आतंकवाद ने एक नया आयाम ले लिया है। यह स्वत:स्फूर्त है और वैचारिक **प्रतिबद्धता** के लिए आइएसआइएस की वेबसाइटों का सहारा ले रहा है। अगर कोई मेंटर या हैंडलर है भी तो वह सामने नहीं आता, बल्कि वेबसाइट के **जरिये** या कूट संदेश के प्लेटफॉर्म के जरिये बात करता है। लिहाजा भारत की केंद्रीय ही नहीं, बल्कि राज्य की खुफिया संस्थाओं को भी अपने तौर-तरीके में क्रांतिकारी परिवर्तन करना होगा। तेलंगाना के एंटी टेररिस्ट स्क्वॉड (एटीएस जिसमें खुफिया तंत्र भी समाहित है) की तर्ज पर इस धमाके के खुलासे और आतंकियों की धरपकड़ का श्रेय भी मात्र इसी संस्था को जाता है, लेकिन इसका पेशेवराना रुख देखिए कि ये अपनी सफलता को कहीं भी नहीं बता पा रहे हैं जबकि भारत की तमाम दूसरी एजेंसियां श्रेय लेने की होड़ में रोज मीडिया को अधकचरी जानकारी दे रही हैं।

भारत का दूसरा संकट यह है कि यह उदार **प्रजातंत्र** है, जहां नागरिक स्वतंत्रता का मुद्दा काफी संवेदनशील माना जाता है। ऐसे में अगर भारत में शांति का माहौल बरकरार रखना है तो पहली शर्त होगी इस लड़ाई को वैचारिक धरातल पर लड़ना और दूसरा सख्त न्यायिक प्रतिकार व्यवस्था जिसमें आतंकियों को अपने शत प्रतिशत पकड़े जाने का डर सताए। खुफिया तंत्र को अपनी **कार्यपद्धति** तेलंगाना के एटीएस की तर्ज पर विकसित करनी होगी, लेकिन राज्य के खुफिया विभाग की मजबूती के बिना यह संभव नहीं है और साथ ही केंद्रीय संस्था नेशनल इंटेलिजेंस एजेंसी को राज्य की समतुल्य संस्थाओं पर **कार्यकारी** नियंत्रण रखने के कानून बनाने होंगे ताकि वे राजनीतिक दबाव में न आएं। कुछ राज्य इस प्रयास को संघीय ढांचे के खिलाफ बताते हुए विरोध करेंगे, पर यह समय की मांग है अन्यथा भारत भी एक अशांत देश बनने के कगार पर खड़ा है। भोपाल-उज्जैन ट्रेन विस्फोट में शामिल **आरोपियों** में से एक आरिफ ने बताया कि उसने कानपुर में अपनी छोटी जायदाद बेच कर दो पिस्तौल खरीदी और उनकी क्षमता परीक्षण के लिए एक बुजुर्ग रिटायर्ड प्रिंसिपल को मार दिया। कानपुर पुलिस के रिकॉर्ड में यह हत्या इस खुलासे से पहले 'अज्ञात' व्यक्ति के खिलाफ दर्ज की गई थी। यह ट्रेन ब्लास्ट भी बमों की क्षमता टेस्ट करने के लिए किया था और मध्य प्रदेश की पुलिस भी इसे एक सामान्य आपराधिक घटना बताकर दबाना चाहती थी, लेकिन धन्यवाद है तेलंगाना एटीएस की उस टीम का जो साये की तरह कई महीनों से इस आतंकी गुट के पीछे लगी थी। गलती से आतंकियों ने ब्लास्ट करने के तत्काल बाद **टेलीग्राम** (नेट पर कूट संदेश भेजने का प्लेटफॉर्म) पर अपने 'आका' को अपनी सफलता के बारे में बताया जिसे हैदराबाद एटीएस का मुख्यालय कई महीनों से ट्रैक कर रहा था। मुख्यालय ने जब अपनी टीम को इस ब्लास्ट की बात बताई तो उन्हें अपनी भूल का अहसास हुआ। बहरहाल **मध्य** प्रदेश के पुलिस प्रमुख को इन आतंकियों की जगह बताई गई। दरअसल तेलंगाना की टीम धमाके से पहले भी उन्हें गिरफ्तार कर सकती थी, पर उनके नजदीक रहते हुए वह संचालक पर हाथ डालना चाहती थी। साये की तरह महीनों पीछे लगे रहने के बावजूद और साथ ही ब्लास्ट के समय ट्रेन में एक कोच छोड़ कर बैठने के बाद भी एटीएस टीम के सदस्य समझ ही **नहीं** पाए कि तीनों आतंकियों की पीठ पर लादे पिट्ठुओं में से एक का वजन ट्रेन से उतरने के बाद कम हो गया है। जब ठीक दो साल पहले मार्च, 2015 में ग्रैमी वुड ने अटलांटिक टाइम्स में 'आइएसआइएस दरअसल चाहता क्या है' (व्हाट आइएसआइएस रियली वांट्स) शीर्षक से एक बड़ा लेख लिखा तो उसके बाद पूरी दुनिया में इस लेख की **चर्चा** रही। वुड ने बताया कि इसे परंपरागत आतंकवादी संगठन समझना और तदनुसार उसे परंपरागत तरीके से निष्प्रभावी करने की कोशिश **मूर्खतापूर्ण** प्रयत्न ही नहीं, बल्कि विश्व के लिए विनाशकारी भी हो सकता है। लेखक ने अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति बराक ओबामा के कथन 'यह संगठन अलकायदा का ज्वाइंट वेंचर (संयुक्त उपक्रम) है' को बचकाना और नासमझी भरा करार दिया। उज्जैन ट्रेन धमाके की घटना और पकड़े गए आतंकियों के

रहस्योद्घाटन की गंभीरता को भी शायद देश की प्रमुख एजेंसियों को नए तरीके से समझना होगा। राज्य पुलिस और खुफिया तंत्र (एक राज्य के एटीसी को छोड़कर) को भी तेलंगाना एटीएस की तर्ज पर बेहद पेशेवर बनाना होगा। इस घटना के आरोपी भी तेलंगाना एटीएस के महीनों के जबरदस्त प्रयास से ही गिरफ्तार हुए या मारे जा सके। यह अलग बात है कि अब कुछ केंद्रीय एजेंसियों और साथ ही कई राज्यों के खुफिया विभाग के लोग मीडिया में हांफ-हांफकर रोज अपनी उपलब्धि बता रहे हैं। यह समय दरअसल श्रेय लेने से ज्यादा अपनी गलतियों को सुधारने और इंटेलिजेंस के पुराने पैटर्न को बदलने का है।इस घटना को किसी दूसरे देश से मिले हथियार या पैसे से अंजाम नहीं दिया गया था। न ही इन गुमराह युवाओं को कट्टरता या हथियार चलाने या बम बनाने का प्रशिक्षण कराची, नेपाल या बांग्लादेश में दिया गया था। इनमें से एक ने अपनी जायदाद बेच कर 9-एमएम की दो पिस्तौल खरीदी थी और वह भी किसी सामान्य गैर-कानूनी हथियार बेचने वाले गैंग से। बम बनाना इन्होंने इंटरनेट पर उपलब्ध 'ज्ञान' से सीखा था। पूछताछ में मालूम हुआ कि ये स्वयं ही आइएसआइएस से प्रभावित थे और उसकी वेबसाइट्स देखते थे। इसी प्रभाव के तहत दस युवाओं ने कानपुर में आरिफ के फ्लैट पर इस आतंकी संगठन के मंसूबे इस्लामी खलीफा शासन को मुकम्मल करने के लिए कसम खाई थी। इसमें चार आतंकी शामिल थे। इनमें एक सैफुल्लाह मारा गया और तीन-सैयद मेरे हुसैन, दानिश और आरिफ घटना स्थल के कई किलोमीटर दूर पिपरिया (होशंगाबाद) से पकड़े गए। गौस मुहम्मद इनका बौद्धिक गुरु था।इस्लामिक आतंकवाद के खात्मे के लिए वैचारिक रूप से एक नए युद्ध की जरूरत है और यह युद्ध इस्लाम के अमनपसंद अनुयायियों द्वारा ही लड़ा जा सकता है। राज्य के तमाम तंत्रों को भी बेहद चुस्त-दुरुस्त करने की दरकार है और सबसे बड़ी जरूरत न्याय व्यवस्था को बदलने की है जिसमें मानवता के अपराधियों के प्रति कोई भी उदारता न दिखाई जाए अन्यथा देर हो जाएगी और तब भारत में शांति बहाल करना मुश्किल होगा। अटलांटिक टाइम्स के लेखक वुड का लेख इसी खतरे के प्रति विश्व को आगाह करता है।

[लेखक ब्रॉडकास्ट एडीटर्स एसोसिएशन के महासचिव हैं]

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 04-04-17

The Past, Made In India

Punjab minister's proposal to decolonise history can be a beginning

Manpreet Badal, the Finance Minister of Punjab, through his "law of historical memory", has decided to erase the domineering memories of India being a country of losers and focus on the grand achievements of Indians. Punjab Chief Minister Amarinder Singh has since claimed that Badal was expressing a personal opinion. Badal though is following the time-honoured strategy of sporting coaches: Think like a winner to be a winner. After all, things that are deemed to be real, often have real consequences.By suggesting a new law for historical representation in public spaces, Badal has done what the Shiv Sena, BJP and the Congress had feared doing, even as they went about twisting history to their liking by renaming roads and buildings, and punishing anyone who wrote a history of which they disapproved. Not that professional historians were different. Irfan Habib, among historians of repute, has been on record saying that professional historians select facts that fit their narrative and ignore others. That does suggest that history writing is open to being diddled by anyone who chooses.

Long ago, the Congress government had started writing history textbooks under the aegis of the NCERT with the stated objective of moulding young Indians in a manner approved by the government. This unleashed a barrage of history writing. On the one extreme were crackpots whose research insisted that the Taj Mahal was a Shiva temple or a Rajput palace. On the other were historians who explained away mass killings and temple-destructions as stray events driven by political expediency. What was common to both was the tremendous whining about exploitation by outsiders. Such outsiders, like the Turks, Farsis and Afghans, who settled here were exempted from deep criticism and attracted appreciation for having contributed to Indian culture. Special venom was reserved for the English, partly because they went back to England, draining some of the fabled wealth of India. It did not matter that the days of India being the soné ki chiriya because of its hand-made cloth, saltpetre and indigo were already over.The people were more interested in knowing about other issues from the past. But the historian, even while accepting the importance of myths and memories for reconstructing history, considered it beneath his/her dignity to allow scientific investigations into myths. Rather, they took ghoulish pleasure in thwarting research into topics of popular curiosity like the Ram setu, or a search for the vanished Saraswati.

Professional historians were soon sucked into the game of shaming Indian culture and civilisation that the English had begun in the 19th century. The English might have had an ideological agenda in showing up India as a country needing a dose of even-handed English justice and equality but, what might have driven the Indian historians? For, soon enough, the shaming game evolved into one where it became fashionable to define India as something that did not exist before English rule. Given our weak traditions of history writing and the copious accounts left by British officers and history writers, we are stuck with a one-sided view of the past. That Indians should accept such stories is not so easy to understand. Could such self-flagellation be the result of them being a demoralised people?By proposing the new law, Badal has ensured that the public will be told about, and positive stories be associated with, the Indian past. It is time that the colonial narrative of India as obscurantist and oppressive was tested against historical evidence. It is true that history tends to be mostly about winners, who get the right to suppress truth. But outsiders cannot be used as reference points for historical memories by a society.As if to underline the extent to which we look at outsiders to define our history, we have the report that tells of how the last survivor of Jallianwala Bagh praised the then British Prime Minister for his condemnation of the event.Hopefully, what Manpreet Badal is now saying would focus our energies on our internal resources for nation building. Minimally, this would help people to stop complaining about the past and show some sense of confidence in their abilities to manage the present.

The writer is professor at the department of history, Panjab University, Chandigarh

---

THE HINDU

Date: 04-04-17

Welcome assurance

Help in tackling the backlog of cases could radically improve executive-judiciary relations

The importance of cooperation between the executive and the judiciary in dealing with the unacceptably high number of pending cases in the country cannot be overemphasised. For over a year, there were indications of an impasse over judicial appointments between the two branches of the state, mainly after the Supreme Court struck down legislation to establish a National Judicial Appointments Commission. That phase appears to be

coming to an end. Prime Minister Narendra Modi's assurance to the Chief Justice of India, J.S. Khehar, that his government would contribute its share in reducing the judiciary's burden is a positive gesture that will be welcomed by the legal fraternity. Speaking at a function to mark the 150th anniversary of the Allahabad High Court, Mr. Modi gave the assurance after observing the pain behind the words of Justice Khehar over the increasing backlog of cases. Justice Khehar's " *dil ki baat* (talk from the heart)" on the problem underscored an institutional anguish that has gripped the judiciary over time. Successive Chief Justices have brought to the government's notice the state of affairs with regard to both the alarming docket situation and the chronic shortage of judicial hands in the superior and subordinate judiciary. The previous Chief Justice of India, T.S. Thakur, had highlighted the point in public functions as well as during judicial hearings, once even wondering if the government wanted to bring the judiciary to a grinding halt by its reluctance to fill up vacancies. If the Prime Minister's latest remarks represent a fresh resolve not to let such an impression gain ground, it will surely represent a new beginning in the executive-judiciary relationship.

Mr. Modi did not spell out whether his assurance to contribute to the process meant his government would expedite the process of appointing judges, but there is no doubt that this will be the most significant contribution as well as the government's responsibility. Official figures show there are as many as 437 vacancies in the High Courts alone as of March 1, 2017. It is incontestable that any effort to liquidate the arrears of cases would involve a significant increase in the speed at which judicial appointments are processed. Mr. Modi also spoke of the use of technology and digitalisation in the judicial system, a point that is of undoubted relevance when one considers the magnitude of the task of reducing the backlog. There is much that the use of technology can do in both liquidating arrears and expediting processes such as filing of documents and serving of notices. Meanwhile, reports suggest that the government and the Supreme Court Collegium may be close to agreeing on a new Memorandum of Procedure for judicial appointments. If differences that caused a prolonged stand-off are eliminated and a new procedure agreed upon, there cannot be better tidings for the institution.

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 04-04-17

अब सिंगापुर में नो एंट्री

कहीं यह डोनाल्ड ट्रंप की नीति का विस्तार तो नहीं? भारतीय आईटी प्रोफेशनल्स के लिए अमेरिकी वीजा प्रतिबंधों ने अभी सिरा भी नहीं पकड़ा कि सिंगापुर भी उसी राह चल पड़ा। सिंगापुर में भी भारतीय आईटी प्रोफेशनल्स के लिए वीजा सीमित करते हुए वहां की भारतीय आईटी कंपनियों पर स्थानीय लोगों को ही रोजगार देने का दबाव बनाया जा रहा है। ऐसे में, भारत की कई नामी आईटी कंपनियां किसी और देश में ठौर तलाशने लगी हैं। सिंगापुर का यह कदम भारतीय आईटी प्रोफेशनल्स के लिए नया संकट बनकर सामने आया है। इसे दो तरह से देखा जा सकता है। एक तो सीधे-सीधे यह कि सिंगापुर भी अमेरिका की राह चल पड़ा और उसे अपने देश की मेधा की अचानक याद आ गई। दूसरे यह कि इसे सिंगापुर की एक चाल के रूप में क्यों न देखा जाए, क्योंकि भारत ने हाल ही में ट्रेड पैक्ट का हवाला देते हुए व्यापक स्तर पर आर्थिक सहयोग समझौते (सीईसीए) की समीक्षा की बात कही थी, जिसे उसने अपने लिए खतरे के रूप में देखा हो। भारत ने फिलहाल यह समीक्षा स्थगित कर दी है। हालांकि सिंगापुर का यह कदम सीधे-सीधे उस समझौते का उल्लंघन है, जो कहता है कि दोनों देशों के बीच जिन सेवाओं पर समझौते हुए हैं, उनमें कोई इकोनॉमिक नीड्स टेस्ट (ईएनटी) या कोटा नहीं होगा।

सिंगापुर पिछले कुछ वर्षों में आईटी क्षेत्र में जिस तरह बड़ा खिलाड़ी बनकर उभरा है, ऐसे में उसकी कुछ महत्वाकांक्षाओं का उभरना अप्रत्याशित नहीं है। लेकिन सिंगापुर को नहीं भूलना चाहिए कि एक तो वह अमेरिका नहीं है। दूसरे, उसके यहां काम करने वाले भारतीय

आईटी विशेषज्ञों जैसी योग्यता ढूढना उसके लिए खासी मुश्किल वाला साबित होगा। इतना ही नहीं, उसका आर्थिक ढांचा भी काफी कुछ भारत के साथ व्यापार पर निर्भर है और यदि भारत ने सिंगापुर से सामान आयात-निर्यात पर कमी की या रोक लगाई या शर्तें बदलीं, तो उसे खासी मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है।

हालांकि भारतीय आईटी सेक्टर को इससे बहुत चिंतित होने की जरूरत नहीं है। व्यापार का सामान्य नियम कहता है कि संभावनाएं कभी खत्म नहीं होतीं। एक संभावना खत्म होती है, तो दूसरी उभर आती है। अमेरिका और सिंगापुर ने भारतीय आईटी प्रोफेशनल्स की पेशानी पर थोड़ी शिकन भले दी हो, पर उन्हें मायूस नहीं होना चाहिए। मैक्सिको जैसे देश पहले ही कह चुके हैं कि यदि अमेरिका एच1बी वीजा वाले भारतीयों को निकालेगा, तो वे उन्हें अपने यहां रखना चाहेंगे। मैक्सिको इसे दोनों देशों के बीच व्यापार-संबंधों को और मजबूत करने की संभावना के रूप में देख रहा है। मैक्सिको जैसी नई संभावनाएं तो ठीक हैं, लेकिन भारतीय मेधा की चिंता सही मायनों में तब दूर होगी, जब हम उनके लिए देश में ही बड़े अवसर उपलब्ध करा सकेंगे। यह सच है कि अमेरिका और सिंगापुर जैसे मामले हमारे सामने उस वक्त आए हैं, जब देश के 60 प्रतिशत इंजीनियरिंग ग्रेजुएट रोजगार से दूर हैं। दरअसल, बदलते वैश्विक परिदृश्य में अमेरिका और सिंगापुर को महज एक शुरुआत के रूप में लेने की जरूरत है। यही समय है, जब हमें अपनी मेधा को दूसरे बाजारों में भेजने की बजाय उसे अपने देश में ही बाजार उपलब्ध कराना होगा। तकनीकी श्रेष्ठता के नाम पर विदेशी सामान का मोह छोड़कर देशी को अपनाना होगा, लेकिन यह तभी संभव है, जब हमारे बाजारों में हमारे ही इंजीनियरों के बनाए उच्च गुणवत्ता वाले प्रोडक्ट मौजूद होंगे। मेक इन इंडिया के जुमले को जमीन देने का यही सही वक्त है। वरना भारतीय मेधा के लिए जो नो एंट्री की नीति चल पड़ी है, वह दिन दूर नहीं कि हमें बड़े स्तर पर पढ़े-लिखों की बेरोजगारी का सामना करना पड़ेगा।